(15) **सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम मदालसा इंटरनेशनल लिमिटेड और अन्य** *(उपरोक्त) मामले* में *बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले* को सुप्रीम कोर्ट ने **पाथेजा ब्रदर्स फोर्जिंग और मुद्रांकन और एक अन्य बनाम आईसीआईसीआई लिमिटेड**[1] (मामले में खारिज *कर दिया है*/ और इसलिए, प्रतिवादीगण उस निर्णय से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

(16) "उपर्युक्त चर्चा के आधार पर, हम यह निर्धारित करते हैं कि 1985 अधिनियम के तहत जाँच के प्रवृत्ति के दौरान, प्रतिस्पर्धी 1 से 4 तक पेशेवर नोटिसों Annexures P/8, P/9, P/12 और P/14 के परिणामस्वरूप पेशेवर तरीके से प्राधिकृत होकर पेशेवर कर के बकाया राशि को प्राप्त करने के लिए किसी बलपूर्ण तरीके का उपयोग नहीं कर सकते हैं।".

(17) इसलिए, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है, लगाए गए नोटिसों को अवैध घोषित किया जाता है और उत्तरदाताओं 1 से 4 को उसके अनुसरण में वसूली करने से रोका जाता है। हालाँकि, हम उक्त उत्तरदाताओं को 1948 अधिनियम और 1956 अधिनियम के तहत कर की बकाया राशि की वसूली करने की अनुमति देने के लिए बीआईएफआर के समक्ष आवेदन करने की स्वतंत्रता देते हैं।

(18) आदेश की प्रति अत्यावश्यक आवेदनों के लिए निर्धारित शुल्क के भुगतान पर दस्ती दी जाए।

आर.एन.आर

न्यायमूर्ति वी. एम. जैन के समक्ष

[1] 2000 (6) एससी 545

गुरदीप सिंह- याचिकाकर्ता

बनाम

हरियाणा राज्य- उत्तरदाता

सी.आर.एल. एम. नं. 47596/एम 2000

22 जनवरी, 2001

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 398, धारा *401 (2) और धारा 403- मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा आरोपित अपराध के संदर्भ में राज्य द्वारा प्रारंभ चरण में दायर की गई आपराधिक शिकायत को खारिज करने का आदेश–सत्रीय न्यायाधीश द्वारा आरोपितों को नोटिस जारी किए बिना खारिज करने के आदेश को खारिज करने का आदेश अदालत द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है–निर्णय, नहीं–व्यक्ति जो कोर्ट में आरोपी के रूप में नहीं आया है, उसका कोई अधिकार नहीं होता कि उसकी सुनवाई की जाए, जब आरोपी के खारिज करने के आदेश को खारिज किया जाता है।*

अभिनिर्धारित किया कि शिकायतकर्ता द्वारा दायर शिकायत को अभियुक्त को बुलाए जाने से पहले ही अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिया गया था।मजिस्ट्रेट द्वारा पारित उक्त आदेश के खिलाफ शिकायतकर्ता ने सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की थी।विद्वत सत्र न्यायाधीश ने विद्वत मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द *कर* दिया, जिस पर आरोपितों द्वारा न्यायाधीश के आदेश को खारिज करने के लिए मांग की गई थी और मामला विधि के अनुसार आगे बढ़ने के लिए ज्ञानी मैजिस्ट्रेट के पास लौटाया गया था, उस आरोपी द्वारा नहीं कहा जा सकता कि आरोपी को नोटिस जारी किए बिना सत्रीय न्यायाधीश

द्वारा दिए गए आदेश को खारिज करने की मांग की गई है।।अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 (2) के प्रावधानों का लाभ नहीं ले सकता है। क्योंकि यह कहा नहीं जा सकता कि शिक्षित सत्रीय न्यायाधीश द्वारा किसी भी आरोपी के खिलाफ कोई आदेश पास किया गया था

(पैरा 14)

गोरख नाथ, *याचिकाकर्ता के वकील*

उत्तरदाता *के लिए कोई नहीं*

निर्णय

(1) यह अभियुक्त याचिकाकर्ता द्वारा दायर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत रद्दीकरण की एक याचिका है जिसमें सत्र न्यायाधीश, सिरसा द्वारा पारित 6 सितंबर, 1999 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सिरसा द्वारा पारित 14 अक्टूबर, 1998 *के* आदेश को रद्द कर दिया, जिसके तहत आपराधिक शिकायत को अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिया गया था।

(2) वर्तमान याचिका के निर्णय के लिए जो तथ्य आवश्यक हैं, वे यह हैं कि हरियाणा राज्य ने ड्रग्स इंस्पेक्टर, सिरसा के माध्यम से 7 सितंबर, 1998 को ड्रग्स एंड कॉस्मेटिक्स एक्ट, 1948 और 1945 के नियमों के प्रावधानों के तहत अभियुक्त याचिकाकर्ता गुरदीप सिंह के खिलाफ आपराधिक शिकायत दर्ज की थी।मामला अभी भी प्रारंभिक चरण में था जब उक्त आपराधिक शिकायत को 14 अक्टूबर, 1998 के आदेश

के माध्यम से सिरसा के विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा अभियोजन के अभाव में *खारिज* कर दिया गया था, क्योंकि शिकायतकर्ता-हरियाणा राज्य की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं था, जब मामला सुनवाई के लिए बुलाया गया था।मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सिरसा, हरियाणा राज्य द्वारा ड्रग्स इंस्पेक्टर के माध्यम से पारित 14 अक्टूबर, 1998 के उक्त आदेश के खिलाफ पीड़ित ने सत्र न्यायालय के समक्ष उक्त आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण याचिका दायर की।विद्वान सत्र न्यायाधीश, सिरसा ने 6 *सितंबर,* 1999 के आदेश के माध्यम से, शिकायतकर्ता-याचिकाकर्ता (सत्र न्यायाधीश के समक्ष) यानी हरियाणा राज्य को सुनने के बाद, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित 14 अक्टूबर, 1998 के आदेश को दरकिनार करते हुए उक्त पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार कर लिया और आपराधिक शिकायत को उसके मूल नंबर पर बहाल करने का आदेश दिया गया और शिकायतकर्ता-हरियाणा राज्य को आगे की कार्यवाही के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया।यह आदेश दिनांक 6 सितंबर, 1999 को विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आरोपी गुरदीप सिंह की सुनवाई किए बिना पारित किया था। सत्र न्यायाधीश, सिरसा द्वारा 6 सितंबर, 1999 को पारित इस आदेश के खिलाफ दुखी होकर, आरोपी गुरदीप सिंह ने अब धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत इस न्यायालय में सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित 6 सितंबर, 1999 के उक्त आदेश को रद्द करने की मांग करते हुए, इस आधार पर कि सत्र न्यायाधीश ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित 14 अक्टूबर, 1998 के आदेश *को* रद्द कर दिया था और आरोपी गुरदीप सिंह (वर्तमान याचिकाकर्ता) को नोटिस जारी किए बिना और उसे सुने बिना 6 सितंबर, 1999 के आदेश के माध्यम से पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार कर लिया था।, वर्तमान याचिका दायर की है।

(3) मैंने अभियुक्त याचिकाकर्ता के विद्वान वकील को सुना है और रिकॉर्ड को ध्यान से देखा है।

(4) अभियुक्त याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने मेरे समक्ष प्रस्तुत किया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश, सिरसा द्वारा 6 सितंबर, 1999 को पारित आदेश को इस संक्षिप्त आधार पर दरकिनार किया जाना चाहिए कि उन्होंने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा 14 अक्टूबर, 1998 को पारित आदेश को दरकिनार करने से पहले अभियुक्त को नोटिस जारी किए बिना और अभियुक्त याचिकाकर्ता को सुने बिना उक्त आदेश पारित किया है, जिसके *अनुसार* अभियोजन के अभाव में आपराधिक शिकायत खारिज कर दी गई थी । इस न्यायालय के दो निर्णयों पर भरोसा किया गया था अर्थात् 1997 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1177, **नाथ राम और अन्य बनाम पंजाब राज्य** 28 अप्रैल, 1998 को एक अन्य निर्णय, प्रतिलिपि अनुलग्नक पी-3 और आपराधिक विविध। संख्या 38938-एम 1999 **दर्शन कुमार बनाम हरियाणा राज्य** का निर्णय 10 दिसम्बर 1999, प्रतिलिपि अनुलग्नक पी-4। इस अदालत के एक अन्य फैसले पर भी भरोसा किया गया है, जिसे **विनोद कुमार जैन बनाम धरम सिंह और अन्य**[2] (1) के रूप में रिपोर्ट किया गया है और अन्य उच्च न्यायालयों के दो फैसलों को भी एच.पी. के रूप में रिपोर्ट किया गया है। **एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम एम.पी.एस. चावला (2), और मो. अफ़ज़ल और अन्य। बनाम नूर निशा बेगम और अन्य**

(5) अभियुक्त याचिकाकर्ता के विद्वान वकील को सुनने के बाद और रिकॉर्ड को पढ़ने के बाद, मुझे इस याचिका में कोई योग्यता नहीं मिलती है और यह बर्खास्त किये जाने योग्य है।

(1) 1997 (1) सीएलआर 323 (हिमाचल प्रदेश)

(2) 1997 (2) सीएलआर 661 (दिल्ली)

[2] 1999 (1) सीएलआर 251

(6) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397, उच्च न्यायालय या किसी सत्रीय न्यायधीश को निचली अदालत के सम्मुख किसी प्रक्रिया की रिकॉर्ड को बुलाने और जांचने की अधिकार प्रदान करती है, ताकि यह खुद को या उसे स्पष्टता, कानूनिता या उपयुक्तता के संबंध में किसी भी फैसले, सजा या आदेश के बारे में संतुष्ट कर सके। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 398 के तहत, यह प्रावधान किया गया है कि धारा 397 के तहत या अन्यथा किसी भी रिकॉर्ड की जांच करने पर, उच्च न्यायालय या सत्र न्यायाधीश मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को स्वयं या अपने अधीनस्थ किसी भी मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसा करने का निर्देश दे सकता है, और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट स्वयं किसी भी अधीनस्थ मजिस्ट्रेट को किसी भी शिकायत की आगे की जांच करने के लिए या निर्देश दे सकता है जिसे धारा 203 या धारा 204 की उप-धारा (4) के तहत खारिज कर दिया गया है, या किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में जिसे अपराध के आरोपी के रूप में आरोपमुक्त कर दिया गया है। इसमें आगे यह प्रावधान किया गया है कि कोई भी न्यायालय इस धारा के तहत किसी ऐसे व्यक्ति के मामले की जांच के लिए कोई निर्देश नहीं देगा जिसे आरोपमुक्त कर दिया गया है, जब तक कि ऐसे व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर नहीं मिला है कि ऐसा निर्देश क्यों नहीं दिया जाना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 399 के तहत यह प्रावधान किया गया है कि किसी भी कार्यवाही के मामले में जिसका रिकॉर्ड स्वयं मांगा गया है, सत्र न्यायाधीश उन सभी या किसी भी शक्ति का प्रयोग कर सकता है जिसका प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा धारा 401 की उप-धारा (1) के तहत किया जा सकता है।इसमें आगे यह प्रावधान किया गया है कि जहां धारा 399 की उप-धारा (1) के तहत सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण के माध्यम से कोई कार्यवाही शुरू की जाती है, वहां धारा 401 की उप-धारा (2), (3), (4) और (5) के प्रावधान, जहां तक हो सके, ऐसी कार्यवाही पर लागू होंगे और उक्त उप-धाराओं में उच्च

न्यायालय को दिए गए संदर्भों को सत्र न्यायाधीश के संदर्भ के रूप में माना जाएगा।दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उप-धारा (1) के तहत, यह प्रावधान किया गया है कि किसी भी कार्यवाही के मामले में जिसका रिकॉर्ड स्वयं बुलाया गया है या जो अन्यथा उसके संज्ञान में आता है, उच्च न्यायालय अपने विवेकाधिकार में, धारा 386,389,390 और 391 द्वारा अपील न्यायालय को या धारा 307 द्वारा सत्र न्यायालय को प्रदत्त किसी भी शक्ति का प्रयोग कर सकता है।धारा 401 की उप-धारा (2) के तहत यह प्रावधान किया गया है कि इस धारा के तहत कोई भी आदेश अभियुक्त या अन्य व्यक्ति के पूर्वाग्रह के लिए नहीं किया जाएगा जब तक कि उसे व्यक्तिगत रूप से या अपने बचाव में वकील द्वारा सुने जाने का अवसर नहीं मिला हो।दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 403 में यह प्रावधान है कि इस संहिता द्वारा अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान किए जाने के अलावा, किसी भी पक्ष को अपनी संशोधन की शक्तियों का प्रयोग करते हुए किसी भी न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से या वकील द्वारा सुने जाने का कोई अधिकार नहीं है; लेकिन न्यायालय, यदि उचित समझता है, तो ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते समय, किसी भी पक्ष को व्यक्तिगत रूप से या वकील द्वारा सुन सकता है।

(7) वर्तमान मामले में, आरोपी याचिकाकर्ता ने सत्र न्यायाधीश, सिरसा द्वारा पारित 6 सितंबर 1999 के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी है कि उक्त आदेश ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 401(2) के प्रावधानों का उल्लंघन किया है। सत्र न्यायाधीश, सिरसा ने पुनरीक्षण याचिका स्वीकार करते समय मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित 14 अक्टूबर 1998 के आदेश को रद्द करने से पहले आरोपी याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया था, जिसके तहत आपराधिक शिकायत को अभाव में खारिज कर दिया गया था।

(8) **राजू बनाम मदन सिंह** (4) के रूप में रिपोर्ट किए गए मामले में इसी तरह का एक बिंदु इस अदालत के समक्ष विचार के लिए आया था। शिकायतकर्ता ने न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष आपराधिक शिकायत दर्ज की थी। प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज करने के बाद, विद्वान मजिस्ट्रेट ने आपराधिक शिकायत खारिज कर दी। इससे व्यथित होकर शिकायतकर्ता ने सत्र न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की। विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार कर लिया और ट्रायल मजिस्ट्रेट को मामले पर नए सिरे से विचार करने का निर्देश दिया। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश के इस आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त ने इस न्यायालय में आपराधिक पुनरीक्षण याचिका दायर की। आरोपी याचिकाकर्ता की ओर से इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई एकमात्र दलील यह थी कि विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश आरोपी याचिकाकर्ता को नोटिस दिए बिना पुनरीक्षण याचिका की अनुमति नहीं दे सकते। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 398 के प्रावधानों पर ध्यान देने के बाद, इस न्यायालय द्वारा यह माना गया कि विधायिका द्वारा दो मामलों में स्पष्ट अंतर किया गया है, अर्थात् जहां आरोपी को आरोपमुक्त कर दिया गया है, उसे पुनरीक्षण शक्तियों में आगे की जांच का निर्देश दिए जाने से पहले न्यायालय के समक्ष सुना जाना चाहिए। । आवश्यक सादृश्य से, यह निष्कर्ष निकलता है कि ऐसा नहीं होगा और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के तहत शिकायत खारिज होने पर ऐसा अवसर देने की आवश्यकता नहीं है। इसे इस न्यायालय द्वारा इस अधिकार में निम्नानुसार रखा गया था :–

> " वास्तव में सुसंगत दृष्टिकोण यह प्रतीत होता है कि जब दंड संहिता की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज करने वाले आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण दायर किया जाता है तो नोटिस जारी करना अनुचित और अनावश्यक होगा। इससे पहले ज्ञात निर्णयों में से एक **टी. एस. रामभद्र ओडायर बनाम**

सम्राट[3], है इसमें मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज कर दिया। सत्र न्यायाधीश ने आरोपी को नोटिस जारी किया।मद्रास उच्च *न्यायालय ने* अभिनिर्धारित किया कि इस तरह की जांच में अभियुक्त का कोई अधिकार नहीं है।अभियुक्त को नोटिस जारी करना अनुचित है, हालांकि अवैध नहीं है। **मेसर्स किरपा राम जगन नाथ बनाम ठाकर हंस राज**[4], के मामले में इस न्यायालय जिसे तब पूर्वी पंजाब उच्च न्यायालय के रूप में जाना जाता थाका दृष्टिकोण वही था । धारा 486, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898, जो वर्तमान संहिता की धारा 398 के समान है, को देखते समय पैराग्राफ 6 में लगभग ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो गई थी, यह माना गया था :-

"1923 में संशोधित वर्तमान धारा के तहत, परंतुक को जोड़कर, यह जरूरी है कि जिस व्यक्ति को आरोपमुक्त कर दिया गया है, उसके मामले में आगे की जांच का आदेश देने से पहले, आरोपी को यह कारण बताने का अवसर दिया जाना चाहिए कि ऐसा क्यों किया गया। आगे की जांच का आदेश नहीं दिया जाना चाहिए, हालांकि, प्रावधान धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज करने पर लागू नहीं होता है। वास्तव में, ऐसे मामलों में आरोपी व्यक्ति को नोटिस जारी करना बहुत अवांछनीय होग।

अध्याय XVI आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत आरोपी व्यक्तियों के पास पूछताछ करने का कोई अधिकार नहीं है और सिद्धांत समान रूप से लागू होता है जहां ऐसी जांच में आदेश की समीक्षा की जा रही है। ऐसा होने पर, मुझे लगता

[3] एआईआर 1928 मद्रास 1198

[4] ए.आई.आर. (37) 1950 पूर्वी पंजाब 18

है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश का 12 जून, 1948 का आदेश किसी भी अवैधता से प्रभावित नहीं है।"

केदार राम और अन्य बनाम रामभरोसा[5], के मामले में न्यायिक आयुक्त, विंध्य प्रदेश का भी यही विचार था।आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने **कोंडा शेषा रेड्डी और अन्य बनाम मुथ्याला चीन पुल्लैया और एक अन्य**[6], के मामले में इसी तरह की स्थिति से निपटने के दौरान फैसला सुनाया।

"विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त को बिना किसी सूचना के आदेश दिया।यह न्यायाधीश के लिए नोटिस जारी करने के लिए खुला हो सकता है; लेकिन इसे छोड़ना निश्चित रूप से आदेश को अवैध नहीं बना सकता है।यह सिद्धांत कि किसी व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिए बिना उसके पूर्वाग्रह पर कोई आदेश नहीं दिया जाना चाहिए, वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है क्योंकि धारा 204 के तहत समन जारी होने और मुकदमा शुरू होने के बाद आरोपी को निश्चित रूप से सुनवाई मिलेगी।

ए. एस. पुरी बनाम के. एल. आहूजा[7], *के* मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने महसूस किया कि इस तरह का नोटिस जारी करना अनुचित है, हालांकि यदि कोई नोटिस जारी नहीं किया जाता है, तो यह अवैध नहीं है।इसे केवल औचित्य के रूप में जारी किया जा सकता है।अंत में **कन्नन उर्फ कृष्णराज और अन्य बनाम आर. ए. वरदराजन और एक अन्य**[8],. के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया

[5] एआईआर] 1952 विंध्य प्रदेश 49

[6] एआईआर] 1958 आंध्र प्रदेश 595

[7] 1970 Crl. L. J. 1441

[8] 1988 Crl. L. J. 605

जा सकता है। इसमें भी सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त को नोटिस जारी नहीं किया था।यह अभिनिर्धारित किया गया कि उक्त आदेश अवैध नहीं है।

6. यहां की स्थिति अलग नहीं है।विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने मामले को केवल विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेज दिया था। गुण-दोष पर दलीलें याचिकाकर्ता द्वारा तब भी उठाई जा सकती हैं जब भी और यदि अवसर आता है। इस स्तर पर, उन्हें सुनने का कोई अधिकार नहीं था।पर्याप्त *सावधानी के* साथ, यह जोड़ा जाता है कि यदि किसी विशेष मामले में विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश को लगता है कि इससे उसे सही निर्णय पर पहुंचने और नोटिस जारी करने का विकल्प चुनने में मदद मिलेगी, तो कुछ भी अवैध नहीं है, लेकिन अन्यथा आरोपी को तब सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है जब धारा 203 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शिकायत खारिज कर दी गई थी। ऐसे आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण याचिका में भी कोई अधिकार नहीं जोड़ा जाएगा।इस प्रकार हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है।"

(9) **संत सिंह और अन्य बनाम गुरमेल सिंह**[9] *के रूप में रिपोर्ट* किए गए मामले में इस अदालत द्वारा यह देखा गया कि रिपोर्ट किए गए मामले में याचिकाकर्ताओं के हित के प्रतिकूल आदेश पारित किया गया था और इसलिए पुनरीक्षण याचिका की अनुमति दी गई थी। हालाँकि, वर्तमान मामले के तथ्यों में, निष्कर्ष दर्ज नहीं किया जा सकता है कि याचिकाकर्ता के प्रतिकूल आदेश पारित किया गया है। इस न्यायालय ने **चंद्र देव सिंह बनाम प्रकाश चंद्र बोस उर्फ चाबी बोस और एक अन्य**[10] के

[9] 1986 (2) सीएलआर335

[10] एआईआर] 1963 एससी 1430

रूप में *रिपोर्ट किए गए मामले में सर्वोच्च न्यायालय के अपने प्रभुओं द्वारा निर्धारित* कानून पर भी भरोसा रखा था।रिपोर्ट किए गए मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज किए जाने के स्तर पर एक आरोपी को सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है।

___पैराग्राफ 7 में यह निम्नानुसार देखा गया थाः

> "पहला आधार लेते हुए, हमें दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XVI की पूरी योजना से यह स्पष्ट लगता है कि एक आरोपी व्यक्ति प्रक्रिया जारी होने तक तस्वीर में नहीं आता है। इसका मतलब यह नहीं है कि जब मजिस्ट्रेट द्वारा जांच की जाती है तो उसे उपस्थित होने से रोक दिया जाता है। क्या हो रहा है इसकी जानकारी पाने के लिए वह व्यक्तिगत रूप से या किसी वकील या एजेंट के माध्यम से उपस्थित रह सकता है। लेकिन चूँकि विचार का प्रश्न यह है कि क्या उसे किसी आरोप का सामना करने के लिए बुलाया जाना चाहिए, तो उसे कार्यवाही में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं है और न ही मजिस्ट्रेट के पास उसे ऐसा करने की अनुमति देने का कोई अधिकार क्षेत्र है। इसलिए, इससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि मजिस्ट्रेट के लिए यह खुला नहीं होगा कि वह आरोपी के रूप में नामित व्यक्ति के कहने पर गवाह से कोई प्रश्न पूछे, जिसके खिलाफ प्रक्रिया जारी नहीं की गई है; न ही वह ऐसे व्यक्ति के कहने पर किसी गवाह से पूछताछ कर सकता है। निःसंदेह, मजिस्ट्रेट स्वयं शिकायतकर्ता द्वारा उसके सामने पेश किए गए गवाह से ऐसे प्रश्न पूछने के लिए स्वतंत्र है जो वह न्याय के हित में उचित समझे। लेकिन उससे आगे वह नहीं जा सकता ।

(10) चंद्र देव सिंह के मामले (ऊपर) में सर्वोच्च न्यायालय के उनके अधिपतियों द्वारा निर्धारित कानून पर भरोसा करने के बाद, इस

अदालत द्वारा यह निर्णय दिया गया कि संत सिंह (ऊपर) के मामले में निर्णय अलग होगा।

(11) ***विजय कुमार बनाम बचनू और अन्य*** [11] मामले में शिकायतकर्ता ने आरोपी के खिलाफ आपराधिक शिकायत दर्ज कराई थी।प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज करने के बाद मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने आरोपी को तलब किया।हालाँकि, अभियुक्त के वास्तव में अदालत में पेश होने से पहले, शिकायत को अदालत द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि शिकायतकर्ता अभियुक्त के पूर्ण और बेहतर विवरण प्रस्तुत करने और आवश्यक प्रक्रिया शुल्क जमा करने के लिए अदालत द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में विफल रहा था। जाहिरा तौर पर, उक्त आदेश विद्वत मजिस्ट्रेट द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204 की उप-धारा (4) के संदर्भ में पारित किया गया था।शिकायतकर्ता ने पुनरीक्षण याचिका के माध्यम से सत्र न्यायालय के समक्ष विद्वान मजिस्ट्रेट के उक्त आदेश पर हमला किया।विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त को नोटिस जारी किए बिना शिकायतकर्ता के पुनरीक्षण की अनुमति दी और ऐसा करते हुए विद्वान मजिस्ट्रेट को कानून के अनुसार आगे बढ़ने का निर्देश दिया।विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित उक्त आदेश को अभियुक्त द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण याचिका के माध्यम से इस अदालत में चुनौती दी गई थी।इस अदालत में आरोपी याचिकाकर्ता के वकील का एकमात्र निवेदन था कि सत्र न्यायाधीश आरोपी याचिकाकर्ता को सुनने का अवसर दिए बिना विवादित आदेश पारित नहीं कर सकता था।यह देखने के बाद कि भले ही ट्रायल मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता को एक आरोपी के रूप में बुलाने का फैसला किया था, फिर भी इससे पहले कि उसे वास्तव में पेश किया जा सके या अदालत के समक्ष एक आरोपी के रूप में पेश किया जा सके, आपराधिक शिकायत को आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 204

[11] 1987 (2) आरसीआर 398

की उप-धारा (4) के तहत खारिज कर दिया गया और इस तरह यह नहीं कहा जा सकता कि आरोपी को आरोपी के रूप में अदालत में पेश होने से पहले ही आरोपमुक्त कर दिया गया था।इस न्यायालय द्वारा आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 (2) भी अभियुक्त याचिकाकर्ता के लिए कोई सहायक नहीं होगी क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त याचिकाकर्ता के प्रति पूर्वाग्रह होने की संभावना थी या वास्तव में पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश से पूर्वाग्रहपूर्ण था या उस आधार पर वह पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा उक्त आदेश पारित करने से पहले सुनवाई का हकदार था। यह माना गया कि आरोपी याचिकाकर्ता के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं था और न ही उसकी स्थिति में किसी भी तरह से बदलाव किया गया था क्योंकि वह बिल्कुल भी घटनास्थल पर नहीं था यानी जब आपराधिक शिकायत खारिज कर दी गई थी तो वह एक आरोपी के रूप में ट्रायल कोर्ट के सामने नहीं था। इस न्यायालय द्वारा आगे यह माना गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204(4) के तहत शिकायत खारिज होने के बाद एक पुनरीक्षण याचिका सत्र न्यायालय में दायर की गई थी और उसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 398 के तहत निपटाया जाना था, जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि केवल वह व्यक्ति जिसे बरी कर दिया गया है, पुनरीक्षण अदालत द्वारा बरी किए जाने के आदेश को खारिज या परेशान करने से पहले कारण बताने का अवसर पाने का हकदार था। इस तथ्य को और भी विस्तार से दर्ज किया गया कि धारा 398 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रतिषेध का तात्पर्य है कि जिस व्यक्ति को बरी नहीं किया गया है या जिस पर मुकदमा नहीं चलाया गया है और जिसने अदालत में आरोपी के रूप में उपस्थिति दर्ज नहीं कराई है, उसके पास शिकायत को खारिज करने के आदेश को रद्द करते समय अदालत द्वारा सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है इसमें एआईआर] 1950 East Punjab 18 (पूर्व) के रिपोर्ट किए गए मामले, एआईआर] 1963 SC 1430 (पूर्व) के रिपोर्ट किए गए मामले, और

सुप्रीम कोर्ट के महामहिमों द्वारा तय किए गए कानून के संदर्भ में भरोसा दिलाया गया था, जो **वडियाल पांचाल बनाम दत्ताराय दुलाजी**[12] नामक मामले के रिपोर्ट किए गए थे।

(12) **सोमू उर्फ सोमसुंदरम और अन्य बनाम राज्य और अन्य**[13] में, मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां आपराधिक शिकायत को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के तहत खारिज कर दिया गया था, याचिकाकर्ताओं को अभियुक्त का दर्जा नहीं मिलता है और उन्हें पुनरीक्षण प्राधिकरण के *समक्ष उपस्थित होने का कोई* अधिकार नहीं है। **मोहम्मद जलालुद्दीन बनाम सैयद इब्राहिम**[14], और एआईआर] 1928 Mad. 1198(supra). पर भरोसा रखा गया था । **राजनरायण राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[15] (11) में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि जहां मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 में निहित प्रावधानों का सहारा लेकर एक शिकायत को खारिज कर दिया था, आरोपी आवेदक बिल्कुल भी आवश्यक पक्षकार नहीं था। पुनरीक्षण में उस पक्ष को सुना जाएगा जिसे शिकायतकर्ता ने धारा 203 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपनी शिकायत को खारिज करने के खिलाफ दायर की थी । एआईआर] 1963 SC 1430 (ऊपर) के रूप में रिपोर्ट किए गए मामले में, सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य द्वारा निर्धारित कानून पर भरोसा रखा गया था ।

(13) इसी प्रकार **शिवशंकर बनाम संथाकुमारी**[16] (12) में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि किसी शिकायत को खारिज

[12] एआईआर] 1960 एससी 1113

[13] 1985 सी.आर.एल. एल.जे. 1309

[14] 1979 सी.आर.एल. एल.जे. एनओसी 68

[15] 1989 All एल.जे.1395

[16] 1992 (1) ऑल इंडिया क्रिमिनल लॉ रिपोर्टर 330

करने के मामले में अपराध के आरोपी व्यक्ति को बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती देने वाली पुनरीक्षण कार्यवाही में सुनने का अधिकार देने की आवश्यकता नहीं है।सोमू बनाम राज्य (ऊपर) के रूप में रिपोर्ट किए गए मामले में *रिलायंस को निर्धारित* कानून पर *रखा गया था।इनज़ेड)।* ***डी. के. अग्रवाल बनाम जनार्दन पी. डी. शर्मा और अन्य***[17] में , इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह तय किया कि एक शिकायत मामले में, जब तक प्रक्रिया संहिता के अनुच्छेद 204 के तहत प्रक्रिया जारी की नहीं जाती है, तो जो व्यक्ति शिकायत में विरोधी पक्ष के रूप में दिखाया गया है, वह जांच प्रक्रिया के मामले के पक्षीय नहीं बनता है और न ही उसके हित को प्रभावित किया जाता है। यह केवल तब होता है जब प्रक्रिया जारी करने के आदेश के बाद और वह उस पर सेवा होने के बाद होता है कि जिस व्यक्ति को शिकायत में विरोधी पक्ष के रूप में दिखाया गया है, वह मामले के पक्षीय बनता है। ।प्रक्रिया जारी होने और उसे दिए जाने पर उसे सुनवाई का अधिकार मिल जाता है। उक्त प्राधिकारी में आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब तक प्रक्रिया जारी नहीं की गई है, जिस व्यक्ति के खिलाफ शिकायत दर्ज की गई है वह पक्षकार नहीं बन जाता है और न ही उसे पीड़ित व्यक्ति कहा जा सकता है।यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि पुनरीक्षण में आवेदक एक आवश्यक पक्षकार नहीं था इसलिए शिकायतकर्ता द्वारा दायर सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण में उसे सही ढंग से पक्षकार नहीं बनाया गया था। **डॉ. एस. एस. खन्ना बनाम मुख्य सचिव, पटना**[18] के रूप *में रिपोर्ट किए गए मामले में सर्वोच्च* न्यायालय के लॉर्डशिप्स द्वारा निर्धारित द्वारा स्थापित किए गए कानून पर आधार रखा गया था।यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि जिस व्यक्ति के

[17] 1987 **एल.जे. एल.जे. एल.जे.**1078

[18] एआईआर] 1983 एससी 595

खिलाफ शिकायत दर्ज की गई थी, वह उसके खिलाफ प्रक्रिया जारी करने से इनकार करने वाले आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण में आवश्यक पक्षकार नहीं *था और इसलिए वह सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण में* सुनवाई का हकदार नहीं था। **कन्नन उर्फ कृष्णराज और अन्य बनाम आर. ए. वरदराजन और एक अन्य**[19] मामले में मद्रास उच्च न्यायालय ने तय किया कि आरोपी नहीं कह सकता कि सत्र न्यायाधीश द्वारा दिये गए आदेश को विचार करते समय कोई सूचना नहीं दी गई थी, इसके कारण उस आदेश को दोषित किया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट के महामहिमों द्वारा "चंद्र देव सिंह बनाम राज्य" के मामले में और मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा "सोमु बनाम राज्य" के मामले में व्यापक किए गए कानून पर आधार रखा गया था।

(14) **नाथ राम और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य** (ऊपर) में, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा धारा 203 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आपराधिक शिकायत को खारिज करने के आदेश को रद्द करते हुए इस न्यायालय द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि आपराधिक शिकायत खारिज करने के आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण याचिका पर सुनवाई करते समय आरोपी को नोटिस जारी नहीं करके प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है। **मोहम्मद अफ़ज़ल और अन्य बनाम नूर निशा बेगम और अन्य 1997 (2) सीएलआर661** (ऊपर) पर आधार रखा गया था।)**।दर्शन कुमार बनाम हरियाणा राज्य** (ऊपर) में, आपराधिक शिकायत को अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिया गया था और उक्त आदेश को शिकायतकर्ता ने सत्र न्यायालय के समक्ष चुनौती दी थी, जिसने आपराधिक शिकायत को खारिज करने के आदेश को रद्द कर दिया था। सत्र न्यायाधीश के उक्त आदेश को चुनौती देने वाले

[19] 1988 सी.आर.एल. एल.जे. 605

अभियुक्त द्वारा दायर याचिका में, इस अदालत द्वारा धारा 401 दंड प्रक्रिया संहिता पर भरोसा करते हुए यह माना गया था कि चूंकि मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द करने से पहले सत्र न्यायाधीश द्वारा अभियुक्त को नहीं सुना गया था, इसलिए सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश कायम नहीं रखा जा सका। **1999 (1) सीएलआर251** (ऊपर) में यह देखने के बाद कि अभियुक्त को सम्मन नहीं भेजना आरोपमुक्त करने के बराबर है और इस प्रकार मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को अभियुक्त को सुनने से पहले पुनरीक्षण में दरकिनार नहीं किया जा सकता है।यह आगे अभिनिर्धारित किया गया कि अन्यथा भी *प्राकृतिक* न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है क्योंकि शिकायत को खारिज करने के लिए कहा गया है कि अभियुक्त ने उसे एक निहित अधिकार दिया था और इन परिस्थितियों में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश की ओर से यह अनिवार्य था कि वह याचिकाकर्ता को उसके खिलाफ कोई प्रतिकूल राय तैयार करने से पहले अवसर दे। मेरी राय में, अभियुक्त याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा मेरे समक्ष उद्धृत इन अधिकारियों में निर्धारित कानून वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा। किसी भी मामले में ये प्राधिकरण इस और अन्य उच्च न्यायालयों द्वारा निर्धारित बिंदु पर अच्छी तरह से स्थापित कानून के विपरीत हैं, जबकि ऊपर उल्लिखित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा निर्धारित कानून पर भरोसा करते हैं।चूँकि इस न्यायालय (ऊपर निर्दिष्ट) द्वारा पहले निर्धारित किए गए मुद्दे पर स्थापित कानून उच्चतम न्यायालय के उनके अधिपतियों द्वारा निर्धारित कानून पर आधारित है, इसलिए मेरी राय में, उपरोक्त प्राधिकरणों में निर्धारित कानून के कारण उत्पन्न हुए विवाद को हल करने के लिए मामले को एक लार्जर बेंच को भेजने की आवश्यकता नहीं है।

इसी तरह दिल्ली उच्च न्यायालय का प्राधिकरण **1997 (2) सीएलआर661** (ऊपर) भी दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित पहले के कानून और उच्चतम न्यायालय के उनके अधिपतियों द्वारा निर्धारित कानून के विपरीत है, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है।जहाँ तक

हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के **1997 (1) सीएलआर323** (ऊपर) का संबंध है, वर्तमान मामले के तथ्यों पर इसका कोई अनुप्रयोग नहीं होगा।रिपोर्ट किए गए मामले में याचिकाकर्ता ने आरोपी के खिलाफ आपराधिक शिकायत दर्ज कराई थी।साक्ष्य दर्ज करने के बाद विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोपी को तलब करने का आदेश दिया।जब अभियुक्त पर नोटिस की सेवा के लिए मामला तय किया गया तो शिकायतकर्ता की ओर से कोई भी पेश नहीं हुआ और तदनुसार शिकायत डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दी गई थी और अभियुक्त को निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट 1881की धारा 138 के तहत अपराध से बरी कर दिया गया। इसके बाद शिकायतकर्ता ने शिकायत की बहाली के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन दायर किया।उक्त आवेदन को विद्वत मजिस्ट्रेट द्वारा यह मानते हुए खारिज कर दिया गया था कि शिकायत को धारा 256 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत खारिज कर दिया गया था और आरोपी बरी हो गया और जो शिकायत डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दी गई थी उसे बहाल नहीं किया जा सका । विद्वान मजिस्ट्रेट के उक्त आदेश को शिकायतकर्ता द्वारा हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय में धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत चुनौती दी गई थी। यह देखने के बाद कि धारा 138 नेगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट के तहत अपराध जब पाया गया कि अपराध एक गैर-संज्ञानीय अपराध था और इसे एक समन प्रकरण के रूप में त्राय्क किया जा सकता था, और धारा 256 दंड प्रक्रिया संहिता के संदर्भ में आधार डालकर हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि शिकायत के खारिज हो जाने से दोषी के मुकदमे में बरी हो जाने के समान है और कि मजिस्ट्रेट को शिकायत का पुनर्स्थापन आदेश देने का कोई अधिकार नहीं था। मेरी राय में, इन अधिकारों में निहित कानून को वर्तमान मामले के तथ्यों पर कोई लागू नहीं होता।

(14) वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, शिकायतकर्ता द्वारा दायर शिकायत को अभियुक्त को बुलाए जाने से पहले

ही अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिया गया था।मजिस्ट्रेट द्वारा पारित उक्त आदेश से आहत शिकायतकर्ता ने सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की थी।विद्वत सत्र न्यायाधीश ने विद्वत मजिस्ट्रेट के आदेश को *दरकिनार* कर दिया, जिसके अनुसार शिकायत को अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिया गया और मामले को कानून के अनुसार मामले में आगे की कार्यवाही के लिए मजिस्ट्रेट को वापस भेज दिया गया। मेरी राय में, किसी भी कल्पना से, आरोपी सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को इस आधार पर रद्द करने की मांग नहीं कर सकता है कि उक्त आदेश सत्र न्यायाधीश द्वारा आरोपी को नोटिस जारी किए बिना पारित किया गया था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, आरोपी याचिकाकर्ता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 (2) के प्रावधानों का लाभ नहीं ले सकता है क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ या पूर्वाग्रह से ग्रसित कोई भी आदेश विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित किया गया था।।दूसरी ओर, वह आदेश, जिसे अभियोजन के अभाव में शिकायत खारिज कर दिया गया था, विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा रद्द कर दिया गया था। यदि आरोपी याचिकाकर्ता का मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 (2) के तहत कवर नहीं किया गया था, तो विद्वान सत्र न्यायाधीश के लिए यह बिल्कुल भी आवश्यक नहीं था कि वह धारा 403 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के मद्देनजर विद्वान मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द करते हुए आरोपी याचिकाकर्ता को सुने। । अन्यथा भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 398 के परंतुक को देखते हुए केवल उस व्यक्ति को सुनने का अधिकार था जिसे आरोपमुक्त कर दिया गया था, इससे पहले कि आरोपमुक्त करने के आदेश को सत्र न्यायालय द्वारा अपने पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए पुनरीक्षण में अलग रखा जा सके।मामले के इस दृष्टिकोण में, मेरी राय में, अभियुक्त याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का यह तर्क कि विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को केवल इस आधार पर

दरकिनार किया जाना चाहिए कि अभियुक्त याचिकाकर्ता को नहीं सुना गया था, कायम नहीं किया जा सका।

(15) मेरे सामने कोई अन्य मुद्दा नहीं उठाया गया है।

(16) ऊपर दर्ज किए गए कारणों से, इस याचिका में कोई योग्यता नहीं पाए जाने पर इसे खारिज कर दिया जाता है।

आर.एन.आर

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

सिद्धांत रॉयल

प्रशिक्षु न्यायिक पदाधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

जगाधरी, हरियाणा